ISSN No. 2349-4654
नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक
वर्ष : 4, अंक : 1, जनवरी 2017

शोध प्रविधि में शोध पत्रिकाओं की भूमिका

पारूल ढींगरा
शोधार्थी, संगीत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध कुछ परंपरागत मान्य तथ्यों को आधार मानकर किया जाता है। एक शोधकर्ता को इन्हीं तथ्यों द्वारा ही शोध की प्रेरणा मिलती है। ये तथ्य शोध के लिए स्त्रोत कहे जा सकते हैं। इन स्त्रोतों के आधार पर ही वह अपने द्वारा किए गए शोध का सत्यापन करता है। शोधकर्ता अपने शोध में विभिन्न स्त्रोतों को आधार मानकर अपने शोध की रूपरेखा तैयार करता है। इसमें शोध पत्रिकाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। शोध पत्रिकाओं की शोध प्रविधि में भूमिका के विषय में जानने से पूर्व शोध एवं संगीत शिक्षण में शोध के इतिहास के विषय में जानना अत्यावश्यक है। प्रस्तुत विषय को ध्यान में रखते हुए शोध अथवा अनुसंधान के विषय में जानने के पश्चात् शोध पत्रिकाओं के आँकलन के लिए निश्चित् मापदंडों का भी उल्लेख शोध पत्र में किया गया है।

अनुसंधान एवं शिक्षण का इतिहास

परिवर्तनशीलता, प्रकृति का अकाट्य सिद्धांत है। पृथ्वी पर जीवन के आरंभ से अब तक की यात्रा इसी सिद्धांत के वशीभूत होकर पूरी हुई है जो अनंत तक चलती रहेगी। समय के साथ-साथ प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन आता है चाहे वह जीवित हो या जड़। मनुष्य का जीवन इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। मनुष्य बालरूप में जीवन की शुरुआत कर फिर किशोरावस्था, यौवनावस्था, अंत में वृद्धावस्था को प्राप्त करता है। यह परिवर्तन ही तो है।

सी. विलियम एमोरी के अनुसार—''शोध का मूल कारण जिज्ञासा है। इसका मतलब ज्ञान और समझ की निरंतर खोज करना है। जैसे मनुष्य की कारण जानने की जिज्ञासा और उसके प्रयास कभी खत्म नहीं होते। वैसे ही समाज के उपलब्धियों की तरफ़ बढ़ते हुए कदम कभी नहीं रुकते।''[1] यह एक व्यवस्थित खोज है अर्थात् ज्यों ज्यों मनुष्य के विचारों में वृद्धि हुई है और उसकी ज्ञान की भूख बढ़ती गई है। त्यों त्यों शोध का क्षेत्र भी बढ़ता गया है। प्रत्येक शोध के साथ समाज को एक नई उपलब्धि की प्राप्ति हुई है। इस तरह कह सकते हैं कि शोध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमारे जीवन से भली भाँति जुड़ा हुआ है। या यूँ कहें कि शोध के कारण ही समाज एक-एक कदम आगे बढ़ कर यहाँ तक पहुँच सका है।

संगीत भी मनुष्य के जीवन में अत्यधिक महत्त्व रखता है और इसका प्रभाव विशाल रूप में है इसलिए इसमें अनुसंधान होना नितांत आवश्यक है। इसके विविध पक्षों को शोध के द्वारा ही सबके सामने लाया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि संगीत में पहले शोध कार्य नहीं हुए हैं। इस अत्यंत प्राचीन विधा में शोध-कार्य अत्यंत पूर्व काल से आरंभ हो चुके हैं। इतने विशाल सागर रूपी संगीत विधा में प्रारंभ से अब तक जो परिवर्तन आए हैं। उसका आधार केवल शोध ही है। संगीतार्थियों ने नए-नए शोध कर नए नए तथ्यों को उजागर किया है। जिससे उसका स्वरूप बदलता चला गया है।

डॉ. सुरेशव्रत राय के अनुसार—''आकस्मिक तथा असंबद्ध हा-हा हू-हू जैसी संकेतात्मक ध्वनियों से संगीत की शोध-यात्रा आरंभ होती है। फिर उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन प्रकार के स्वर आगे चलकर सात और तत्पश्चात् बारह स्वरों का निर्धारण और स्पष्ट प्रयोग। इतना ही नहीं, बाईस श्रुतियों का प्रतिपादन, जिसे स्व. डॉ. लालमणि मिश्र ने उत्तर भारत की रूद्र वीणा में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके नए वाद्य श्रुति-वीणा को आधार बनाकर षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम तथा सारणा चतुष्टयी द्वारा उत्पन्न बाईस श्रुतियों तथा उनके अंतराल को सहज एवं स्पष्ट रूप से दिग्दर्शित किया। स्वरों के साथ रागों के स्वरूप, राग-जातियों, सप्तकों का निर्धारण, प्रारंभ में वेदों के छन्द-गान के पश्चात् जाति, प्रबंध, ध्रुवा तथा ध्रुवपद-गायन-शैलियाँ, शारंग देव द्वारा रागालप्ति तथा रूपकालप्ति शैलियों के रूप में नादवती प्रबंध की व्याख्या तथा स्वरप्रधान एवं भावप्रधान शैलियों का प्रतिपादन, रागों के स्वरूप के संदर्भ में मूलज भाषा, देशज भाषा, छाया भाषा तथा संकीर्ण भाषा का प्रतिपादन, जिनसे सूत्र ग्रहण करके कालांतर में अर्द्धशासकीय कही जाने वाली शैलियों का प्रचलन हुआ।''[2]

भारतीय संगीत में वेदों का स्थान सर्वोपरि है। उपरोक्त मत में लेखक ने संगीत के आदि से अब तक की यात्रा का बखान किया है। इन वेदों में पहले केवल तीन स्वरों (उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित) का ही वर्णन है। तत्पश्चात् अनुसंधान के फलस्वरूप ही विभिन्न ग्रंथकारों द्वारा अपने ग्रंथों में सात शुद्ध स्वर और तत्पश्चात् उनके विकृत रूपों का वर्णन किया गया है। ग्राम, मूर्च्छना, राग गायन, ख्याल गायन ये सभी अनुसंधान के फलस्वरूप ही संगीत में प्रविष्ट हो पाए। श्रीनिवास द्वारा वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना, पं. नारायण मोरेशर खरे द्वारा दिए गए 30 रागांग, पं. विष्णु नारायण भातखंडे के दस थाट, व्यंकटमुखी के 72 थाट आदि इस अनुसंधान

के ज्वलंत उदाहरण हैं। इन्हीं अनुसंधानों के फलस्वरूप संगीत का स्वरूप इतना बदल चुका है कि जो संगीत वैदिक काल में केवल ब्राह्मणों का विशेषाधिकार था और केवल यज्ञादि के समय गाया जाता था वह अब समाज के हर वर्ग तक पहुँच चुका है। इन तथ्यों से यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि संगीत एवं अनुसंधान का प्राचीन एवं प्रगाढ़ संबंध है। संगीत में नित्य नवीनता के लिए अनुसंधान अत्यंत आवश्यक है।

वैदिक काल से मध्यकाल तक संगीत की शिक्षा गुरुकुलों एवं आश्रमों में दी जाती थी। गुरु या उस्ताद अपने गुरुकुलों में अपने शिष्यों को सीना ब सीना संगीत की शिक्षा प्रदान किया करते थे। इसे व्यक्तिगत शिक्षण प्रणाली भी कह सकते हैं। वैदिक कालीन संगीत विषय सामग्री पर दृष्टिपात करने पर प्रतीत होता है कि उस समय संगीत कला के क्रियात्मक व सैद्धांतिक दोनों पक्ष सर्वोच्च तल पर प्रतिष्ठित थे। इतने उन्नत संगीत की कल्पना किसी शिक्षण विधि के अभाव में कभी संभव नहीं हो सकती।

डॉ. पंकजमाला शर्मा के अनुसार, ''संगीत से संबंधित इतने विशाल साहित्य का सृजन एक दिन में अथवा अपने आप हो गया, ऐसा नहीं माना जा सकता इसके पीछे संगीत-शिक्षा की निश्चित रूप से एक सुदीर्घ परंपरा रही होगी।''[3]

अत: स्पष्ट है कि वैदिक काल में संगीत शिक्षण को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था एवं उसे एक उन्नत कला का रूप प्रदान करने में शिक्षण पद्धति का बहुत बड़ा योगदान रहा है। साधारण रूप से वैदिक साहित्य में साम प्रशिक्षण के तीन रूप प्रचलित होने का संकेत मिलता है—

1. पिता-पुत्र के रूप में

2. गुरु-शिष्य परंपरा के रूप में

3. गुरुकुल में जाकर शिक्षा ग्रहण करना।[4]

भारत में विदेशियों के आगमन के पश्चात् संगीत शिक्षण पद्धति कई चरणों से हो कर गुज़री परन्तु मध्यकाल के अंत तक गुरु शिष्य परंपरा (घराना पद्धति) अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँच चुकी थी। तत्पश्चात् भारत में अंग्रेजों का आगमन हुआ। अंग्रेजों के भारत में आगमन से शिक्षण पद्धति में आकस्मिक परिवर्तन हुआ। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की स्थापना हुई। शिक्षा प्रणाली का पश्चिमीकरण होने लगा। इसका प्रभाव संगीत पर भी पड़ा और संगीत की शिक्षा विश्वविद्यालयों में भी दी जाने लगी। परन्तु अंग्रेजी सत्ता के दृष्टिकोण से यह केवल व्यक्तित्त्व के विकास का अंग था और उन्होंने इसे शेष विषयों की श्रेणी में ही रख दिया था।

डॉ. मधुबाला सक्सेना के शब्दों में—''ब्रिटिश राज्य के व्यवस्थापकों ने संगीत कला के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाकर उसे यद्यपि व्यक्तित्त्व के विकास का अंग माना परन्तु यह दृष्टिकोण आध्यात्मिकता के धरातल पर स्थित न था उन्होंने अन्य विषयों के समान ही एक विषय के रूप में इसे स्वीकार किया, वैज्ञानिक प्रगति की प्रभावशीलता के कारण यह विषय अन्य पाठ्य-विषयों के बीच उपेक्षित ही रहा।''[5]

अंग्रेजों के भारत में आगमन के पश्चात शिक्षा प्रणाली का पश्चिमीकरण होने लगा। इसका प्रभाव संगीत पर भी पड़ा और संगीत की शिक्षा विश्वविद्यालयों में भी दी जाने लगी। तत्पश्चात् संगीत के कुछ विद्वानों द्वारा संगीत की कुछ संस्थाओं की स्थापना की गई। क्षेत्र मोहन गोस्वामी द्वारा संगीत महाविद्यालय की स्थापना, पं. भास्कर राव बखले द्वारा पूना में 1874 में भारत गायन समाज की स्थापना, उस्ताद मौलाबख्श, पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर एवं पं. भातखंडे द्वारा स्थापित विभिन्न संस्थाएँ भी महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। इन संस्थाओं को भारतीय परंपरागत संगीत शिक्षण एवं पश्चिमीकृत शिक्षण का मिला-जुला स्वरूप कह सकते हैं। इसके बाद देश में संगीत-शिक्षण तीन प्रकार से हो रहा था।

1. प्राचीन गुरु शिष्य परम्परा के अनुसार

2. संगीत की एकमात्र शिक्षा प्रदान करने हेतु स्थापित विद्यालयों में

3. सामान्य शिक्षा संस्थाओं में विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम में एक विषय की भाँति।

तत्पश्चात् महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अन्य विषयों की भाँति अनुसंधान का प्रचलन बढ़ा एवं अनुसंधान के स्वरूप में तेजी से बदलाव आया। अब यह उच्च शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन चुका था एवं उसका स्वरूप भी दो भागों में बँट चुका था। जो इस प्रकार थे—

1. सोपाधि अनुसंधान 2. निरोपाधि अनुसंधान

निरूपाधि अनुसंधान वह अनुसंधान है जिसमें किसी उपाधि को प्राप्त करना उद्देश्य नहीं रहता। यह केवल ज्ञानार्जन, आत्मिक संतुष्टि एवं सामाजिक हित के लिए किया गया शोध है। विश्वविद्यालयों के अंतर्गत जो अनुसंधान होते हैं वह सोपाधि अनुसंधान के अंतर्गत आते हैं जिसमें अनुसंधानकर्ता अपने अनुसंधान के लिए पहले क्षेत्र निर्धारित करता है फिर उसे विश्वविद्यालय द्वारा पंजीकृत करवाता है। अनुसंधानकर्ता को अनुसंधान पूर्ण होने के पश्चात् डॉक्टरेट की उपाधि से विभूषित किया जाता है, जबकि प्राचीन काल में जितने भी ग्रंथ मिलते हैं वे सभी पूर्वकालीन ग्रंथकारों द्वारा ज्ञानार्जन एवं आत्मिक संतुष्टि के लिए लिखे गए हैं। ये ग्रंथ निरूपाधि अनुसंधान के अंतर्गत आने वाले अनुसंधान कार्य हैं।

इन अनुसंधान कार्यों ने संगीत के क्षेत्र में बहुत योगदान दिया है। कई ऐसे क्षेत्र जिनमें जानकारी मिलना संभव नहीं हो पाता था। इन अनुसंधान कार्यों के पश्चात् उन क्षेत्रों में ज्ञान प्राप्त करना अत्यधिक आसान हो गया है। अनुसंधान के प्रारंभ के विषय में जानने के पश्चात् उसका अर्थ जानना अति आवश्यक है।

अनुसंधान की परिभाषाएँ एवं उनकी व्याख्या

अनुसंधान का अर्थ ही है नई खोज करना अथवा पूर्व में अविष्कृत तथ्यों या परंपरागत तथ्यों को नई दिशा देना या उन्हें आधार मान कर नए तथ्यों

को ढूँढ़ना। विभिन्न विद्वानों ने अनुसंधान को अपने अनुभव द्वारा इस प्रकार पारिभाषित किया है।

बैजनाथ सिंहल के अनुसार—''अनुसंधान के व्युत्पत्यर्थ को देख लेना अपेक्षित है। अनुसंधान शब्द निष्पत्ति 'धा' धातु के साथ 'अनु' तथा 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'ल्यूट्' (अन्) प्रत्यय से होती है। 'धा' का अर्थ है 'रखना', 'स्थिर करना'। इस प्रकार इसका लक्षण और व्यंजनागत अर्थ हुआ— दृष्टि को किसी वस्तु अथवा विषय पर रखना या मन को किसी विषय पर केंद्रित करना और इसी से अनुसंधान शब्द खोज, सोच-विचार, पूछताछ, परीक्षण इत्यादि रूपों में प्रयुक्त हुआ।''[6]

उपर्युक्त परिभाषा में जहाँ विद्वान बैजनाथ सिंहल ने अनुसंधान का अर्थ व्याकरण के तौर पर दिया है वहीं उन्होंने अपनी पुस्तक में अनुसंधान शब्द के कई पर्यायवाची शब्द भी उल्लेखित किए हैं। उन्होंने अन्वेषण, गवेषणा, अनुशीलन-परिशीलन, समीक्षा, आलोचना, खोज शोध-रिसर्च आदि शब्दों को अनुसंधान का पर्यायवाची माना है।

F.L.Whitney–''तथ्यों और सिद्धांतों का पता लगाने के लिए सावधानीपूर्वक या तर्कपूर्ण ढंग से अध्ययन करना या किसी चीज़ को सुनिश्चित करने के लिए अध्यवसायपूर्वक खोज करना ही अनुसंधान है।''[7]

Encyclopedia of the Social Sciences—''अनुसंधान, वस्तुओं, प्रत्ययों तथा संकेतों आदि को कुशलतापूर्वक व्यवस्थित करता है, जिसका उद्देश्य सामान्यीकरण द्वारा ज्ञान का विकास, परिमार्जन या सत्यापन होता है। चाहे वह ज्ञान व्यवहार में सहायक हो या कला में।''[8]

J.W.Best के अनुसार—अनुसंधान विश्वसनीय समाधानों तथा निष्कर्षों तक पहुँचने की वह प्रक्रिया है जिसमें योजनाबद्ध कार्य तथा तत्संबंधी प्राप्त सामग्री का विधिवत् संकलन विश्लेषण तथा व्याख्यान समाविष्ट होते हैं।''[9] वह यह भी कहते है कि ''शोध एक व्यवस्थित प्रक्रिया है जो कि व्यवस्थित ज्ञान की खोज एवं विकास की ओर निर्देशित है।''[10]

P.V.Young के अनुसार—अनुसंधान एक वैज्ञानिक उपक्रम है जो तार्किक एवं व्यवस्थित तकनीकों के साथ निम्नलिखित पर केंद्रित होता है।

1. नए तथ्यों की खोज एवं पुराने तथ्यों का सत्यापन।
2. उनके क्रमों, पारस्परिक संबंध और सामान्य व्याख्याओं का अन्वेषण।
3. नए वैज्ञानिक यंत्रों, अवधारणाओं और सिद्धांतों का विकास जो मानवीय व्यवहार के विश्वसनीय और ठोस अध्ययन में सहायक हो सके।''[11]

उपरोक्त सभी परिभाषाएँ विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। इनके अनुसार यदि इन सभी परिभाषाओं में दिए गए तर्कों को मिलाकर अनुसंधान को परिभाषित किया जाए तो कह सकते हैं कि ''शोध वह व्यवस्थित एवं उच्च प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत सभी प्राप्त तथ्यों का आँकलन एवं वर्गीकरण किया जाता है, तत्पश्चात् उन तथ्यों के पारस्परिक संबंधों एवं उनसे मिलने वाले प्रमाणों के द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है अर्थात् किसी समस्या का समाधान किया जा सकता है।''

अनुसंधान शब्द के पर्यायवाची के अर्थ में, हिन्दी में—शोध, अन्वेषण, गवेषणा, खोज, अन्वीक्षण, अन्वीक्षा, अनुशीलन, परिशीलन, संशोधन की गणना की जाती है और अंग्रेज़ी भाषा में-डिस्कवरी, रिसर्च, डाक्टरेट, थीसिस एवं पी.एचडी. शब्द माने गए हैं।

शोध के लिए प्रयुक्त स्त्रोतों में शोध पत्रिकाओं का महत्त्व

किसी भी अनुसंधान में निरंतर आगे बढ़ने के लिए शोधार्थी को कुछ तथ्यों की आवश्यकता पड़ती है और तथ्यों को शोधार्थी विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त करता है। प्रत्येक विषय या समस्या के क्षेत्र पर ही उसके स्त्रोत भी निर्धारित होते हैं। शोध में तथ्यों की आवश्यकता पर ही स्त्रोत की प्रकृति निर्भर करती है। संगीतानुसंधान में शोध पत्रिकाओं के योगदान को जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि शोध पत्रिकाएँ वास्तव में हैं क्या और किस दिशा में कार्य करती हैं। शोध पत्रिकाओं को अंग्रेज़ी भाषा में Research Journals कहा जाता है।

New Webster's Dictionary of the English Language के अनुसार, शोध पत्रिका (Journal) का अर्थ इस प्रकार है—A news-paper or other periodical published daily; any periodical or magazine, esp. one published for aspecific profession; as a medical journal.

अर्थात् ऐसी नियत कालिक पत्रिका जो किसी विषय विशेष से संबंधित हो। इन शोध पत्रिकाओं में किसी विषय विशेष से संबंधित शोध लेखों को स्थान दिया जाता है। सर्वप्रथम शोध लेखों को एकत्र करने का कार्य किया जाता है। किसी भी शोध पत्रिका के प्रकाशन में संपादक की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका मानी जा सकती है। संपादक द्वारा शोध लेखों को एकत्र करने के पश्चात् शोध पत्रिका की पियर रिव्यू कमेटी उन शोध लेखों का आकलन करती है। इस आकलन के पश्चात् यदि इन शोध लेखों में कोई त्रुटियाँ पाई जाती हैं तो इन शोध लेखों को वापिस लेखक के पास भेज दिया जाता है। इस प्रकार शोध पत्रिका में प्रकाशित होने वाले लेखों की गुणवत्ता का स्तर उच्च रहता है। संपूर्ण रूप से शोध लेख के आकलन के पश्चात् ही उस शोध लेख को शोध पत्रिका में स्थान दिया जाता है।

संगीत शोध पत्रिकाएँ एवं पत्रिकाओं का क्रमिक विकास

संगीत विषय पर आधारित विभिन्न शोध पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रही हैं जिनका सांगीतक शोध में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। संगीत की प्रथम पत्रिका के विषय में संगीत के विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं कुछ विद्वान एन्युअल रिर्पोट ऑफ बंगाली स्कूल ऑफ म्यूज़िक को प्रथम पत्रिका मानते हैं यह पत्रिका 1871 में कलकत्ता से प्रकाशित हुई। कुछ और विद्वानों की माने तो उन्होंने विश्वनाथ रामचंद्र काले जो कि संगीत

प्रचारक थे के द्वारा 1870 में मौलाबख्श के साथ शुरू की गई पत्रिका 'गायनब्धिसेतु' को प्रथम पत्रिका माना है। कुछ विद्वान 1880 में प्रकाशित 'संगीत दर्पण' को जिसे बालकृष्णबुवा इचलकरंजीकर ने आरंभ किया प्रथम पत्रिका के रूप में स्वीकारते हैं परन्तु इसके आरंभ के विषय में संदेह है। इसके बाद 1886 में अन्ना साहब धारपुरे ने संगीत मीमांसक पत्रिका का आरंभ किया, ऐसा भी मत है। परन्तु इसके भी कहीं और प्रमाण नहीं मिल पाए हैं। इसके पश्चात् श्री चिन्नस्वामी मुदलियार द्वारा 1892 में एक पत्रिका प्रकाशित की गई। इसके लिए कई विद्वानों में मतैक्य भी है। इसके पश्चात् 1905 में पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर जी ने लाहौर से संगीतामृत प्रवाह पत्रिका निकाली जो हिन्दी भाषा में थी। सन् 1908 में यह पत्रिका संगीत प्रिंटिंग प्रेस बंबई से बड़े पैमाने पर निकलने लगी तथा गांधर्व महाविद्यालय से मराठी भाषा में भी प्रकाशित होने लगी। किन्तु अनेक कठिनाईयों के कारण यह सन् 1920 तक ही प्रकाशित हो पाई। तत्पश्चात् 1909 में कर्नाटक संगीतम् का प्रकाशन आरंभ हुआ। एस. आर. कुप्पुस्वामी इसके प्रकाशक थे और यह कोयंबटूर से प्रकाशित हुआ। गांधर्व महाविद्यालय नामक पत्रिका का आरंभ पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने 1910 में किया। यह पत्रिका हिन्दी और मराठी भाषाओं में छपती थी। परन्तु जल्द ही इसका प्रकाशन बंद हो गया। दि इंडियन म्यूज़िक जरनल जोकि 1912-13 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद वह भी बंद हो गया। इसके बाद मद्रास म्यूज़िक अकादमी से 'जरनल ऑफ म्यूज़िक अकादमी मद्रास' 1929 में प्रकाशित होना आरंभ हुआ। यह अभी तक प्रकाशित हो रहा है। 1930 में विलियम मैरिस कालेज से संगीत पत्रिका का प्रकाशन हुआ। छ: खण्डों के बाद प्रकाशन बंद हो गया। यह पत्रिका अंग्रेजी और हिन्दी दोनों में प्रकाशित हुई थी। भारत गायन समाज द्वारा दो द्वैमासिक पत्रिकाओं भारतीय संगीत एवं भारतीय समाज का प्रकाशन क्रमश: 1935 और 1932 में हुआ। यह पत्रिकाएँ मराठी भाषा में प्रकाशित होती थी। 1935 में संगीत पत्रिका, संगीत कार्यालय हाथरस से आरंभ हुई। इस पत्रिका के संस्थापक प्रभुलाल गर्ग थे। वर्तमान में यह लक्ष्मी नारायण गर्ग के संपादकत्व में सफलता पूर्वक प्रकाशित हो रही है। म्यूज़िक ऑफ इंडिया का प्रकाशन 1937 में आरंभ हुआ था 1938 में यह भी बंद हो गया। अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय द्वारा ''संगीत कला विहार'' पत्रिका का प्रकाशन 1947 में आरंभ हुआ। यह पत्रिका सफलता पूर्वक संगीत में अपना योगदान दे रही है। संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्रकाशित शोध पत्रिका संगीत नाटक का आरंभ 1965 में हुआ और अभी तक जारी है। म्यूज़िकोलोजिकल सोसायटी द्वारा ''जरनल ऑफ इंडियन म्यूज़िकोलोजिकल सोसायटी'' 1970 में आरंभ हुआ। यह अभी तक चल रहा है। इनके अतिरिक्त कई अन्य संगीत शोधपत्रिकाओं और पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ।

विभिन्न संगीत विषय क शोध पत्रिकाओं एवं पत्रिकाओं को शोधोपयोगी सिद्ध करने के लिए कुछ मापदंडों का तय किया जाना अत्यावश्यक है। शोधार्थी द्वारा इस कार्य के लिए कुछ मापदंडों का निर्धारण किया गया है। ये मापदंड इस प्रकार हैं।

संगीत की विभिन्न शोध-पत्रिकाओं के आँकलन हेतु विभिन्न मापदंड

शोध में महत्त्वपूर्ण स्त्रोत के रूप में प्रयुक्त होने वाली शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध लेखों का आँकलन होना अत्यंत आवश्यक है। संगीत की विभिन्न शोध पत्रिकाओं एवं पत्रिकाओं के आँकलन के लिए तय किए गए विभिन्न मापदंडों को विस्तार से जानना अत्यंत आवश्यक है। शोधार्थी के अनुसार उनकी विस्तृत जानकारी के पश्चात् यह आँकलन कुछ सीमा तक सरल हो सकेगा। यहाँ पर तय किए गए मापदंडों के विषय में विस्तार पूर्वक वर्णन किया जा रहा है।

लेखक

शोध-पत्रिकाओं के लेखों के मूल्यांकन पर विचार करें तो इस महत्त्वपूर्ण मूल्यांकन के मापदंडों में सर्वप्रथम लेखक को देखा जाता है। इसके लिए लेखक के पहले के कार्यों को भी आधार माना जा सकता है। यह भी जानना आवश्यक है कि लेख का उद्देश्य शोधात्मक है या वह केवल सूचनाप्रदत्त लेखन में ही रुचि रखता है। यह जानने के लिए लेखों के आरंभ में दी हुई भूमिका अथवा व्याख्यान को पढ़ कर अनुमान लगाया जा सकता है। लेखक के अनुभवी, प्रतिभावान एवं योग्य होने के कारण लेख की प्रमाणित होने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। अत: प्रसिद्ध लेखक द्वारा लिखे गए लेख का होना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि उसी से शोधार्थी भी प्रभावित होता है और उसके चिंतन एवं लेखन में भी गुणवत्ता का स्तर बढ़ता है।

प्रकाशक

किसी भी शोध लेख में लेखक के साथ-साथ प्रकाशक भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जहाँ लेखक लेख के तकनीकी अर्थों में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है, वहाँ उस लेख के विकास एवं प्रचार के लिए प्रकाशक की भूमिका भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती है। प्रकाशक के अपने सिद्धांतों एवं उद्देश्यों से यह पता करना आसान हो जाता है कि प्रकाशक लेख के प्रचार एवं प्रसार में किस सीमा तक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यदि प्रकाशक एवं लेखक के उद्देश्यों में समानता हो तो शोध लेख निश्चित ही अपनी सफलता को प्राप्त करता है।

विचारों की स्पष्टता

लेखक द्वारा लिखे गए लेख में आँकलन के लिए यह जानना आवश्यक है कि जिस लेख को लेखक ने इतनी खोजबीन एवं परिश्रम के बाद लिखा है वह लेखक द्वारा निश्चित किए गए उद्देश्यों को पूरा करने में सक्षम है या नहीं। यदि वह सक्षम नहीं है तो उसे शोधोपयोगी लेखों की श्रेणी में कदापि नहीं रखा जाना चाहिए। कभी कभी लेखक अथवा शोधार्थी शोधलेख की रचना करते समय पथभ्रष्ट हो जाते हैं। जिससे लेख अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता। विचारों की स्पष्टता के आधार पर शोध लेख पुष्ट होता है। विचारों का सफलता पूर्वक विश्लेषण लेख की सफलता मानी जा सकती है। इसके लिए लेखक का प्रतिक्षण सजग रहना अत्यंत आवश्यक है।

तथ्य पूर्ण लेख

किसी भी शोध में सत्य की स्थापना करने के लिए जिस साधन की आवश्यकता होती है वह तथ्य है। तथ्य एक ऐसा सत्य है जो सभी प्रकार के भ्रमों, कल्पनाओं एवं सिद्धांतों से परे है, यह कोई अनुभव, घटना, अथवा कोई मत हो सकती है जिसे शोध के लिए आधार माना जा सकता है। यह बात सर्वथा सत्य है कि शोधार्थी शोध लेख को लिखने से पूर्व शोधोपयोगी सामग्री एकत्र करते हैं। तत्पश्चात् एकत्रित सामग्री का उचित रूप से आँकलन करके उसे शोधलेख का रूप देते हैं। उस सामग्री को विभिन्न तर्कों के रूप में देकर वे अपनी बात को सिद्ध करते हैं अथवा इस सामग्री को अपने तर्कों को सिद्ध करने के लिए प्रमाण रूप में प्रयोग करते हैं। किसी भी लेख का शोधपयोगी होना तभी सिद्ध हो सकता है जब यह सामग्री जो कि शोधार्थी द्वारा प्रमाण रूप में प्रयोग की गई है सही सिद्ध हो अर्थात् इसकी वैधता का सिद्ध होना अत्यावश्यक है।

भाषा

उपरोक्त शीर्षक 'विचारों की स्पष्टता' के अंतर्गत अनुच्छेद में एक चिंता व्यक्त की गई थी कि लेखक अपने लेख में विचारों की स्पष्टता को व्यक्त करने के लिए अपने लेख में उद्देश्यपूर्ति के लिए विभिन्न प्रयास करता है। इन प्रयासों में भाषा की स्पष्टता एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। कभी कभी कुछ शोध लेख सत्यापित होते हुए भी पाठकों अथवा शोधार्थियों के शोध का हिस्सा नहीं बन पाते उसका एक कारण उनकी भाषा भी हो सकती है क्योंकि लेखक द्वारा लिखी गई भाषा कभी कभार पाठक को पूर्ण रूप से प्रभावित नहीं कर पाती। इसके विपरीत भाषा यदि स्पष्ट है तो सामान्य सी भाषा के साथ भी सूचना अथवा तथ्य विभिन्न शोधार्थियों के शोध का हिस्सा बन जाते हैं। भाषा का स्पष्ट होने के साथ सरल होना भी ज़रूरी है। इससे शोध लेख के पाठकों पर इसका अधिक प्रभाव पड़ता है।

संपादक

किसी भी लेख के प्रकाशन से पूर्व शोध पत्रिका के संपादक का महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। संपादक अपनी शोध पत्रिका की विषय -वस्तु को ध्यान में रख करज़उसके उद्देश्यों की पूर्ति करते हुए शोध लेख को अपनी संपादन के पश्चात् शोध पत्रिका में स्थान देता है। वह यह भी निर्धारित करता है है कि शोध लेख, शोध पत्रिका में प्रकाशनार्थ उपयोगी है या नहीं। इसके अतिरिक्त उसके द्वारा संपादित शोध-पत्रिका में संपादकीय में भी विभिन्न शोध लेखों के विषय में दी गई जानकारी के अनुसार शोध लेखों की गुणवत्ता का पता किया जा सकता है। संपादक द्वारा उन विभिन्न शोध लेखों का चुनाव किया जाता है जिनके द्वारा शोध पत्रिका के उद्देश्यों की पूर्ति संभव हो अथवा वे किसी न किसी रूप में उसके कार्य को संबल प्रदान करते हों। संपादक को शोध लेखों की उच्चता एवं उनकी सत्यता का विशेष खयाल रखना पड़ता है जिससे उनकी शोध पत्रिका का स्तर भी बना रहे। यहाँ शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित विभिन्न शोध लेखों के आँकलन के लिए विभिन्न मापदंडों के विषय में जानने के पश्चात् एक प्रसिद्ध शोध पत्रिका ''जर्नल ऑफ इंडियन म्यूज़िकोलोजिकल सोसायटी'' में आरंभ से अब तक प्रकाशित शोध लेखों का आँकलन करने का भी प्रयास किया गया है।

जरनल ऑफ इंडियन म्यूज़िकोलोजिकल सोसायटी : आरंभ एवं विकास

जरनल ऑफ म्यूज़िकोलोजिकल सोसायटी, एक ऐसी शोध-पत्रिका है जिसका आरंभ किसी अन्य शीर्षक के अंतर्गत हुआ। अंग्रेज़ी भाषा में छपने वाली यह शोध-पत्रिका जनवरी 26, 1970 को संगीत कला विहार के अंग्रेज़ी संस्करण के रूप में शुरू की गई। यह शोध-पत्रिका एक त्रैमासिक के रूप में आरंभ की गई थी। उस समय इस पत्रिका को आरंभ करने का पहला उद्देश्य पाठक एवं लेखक के मध्य संवाद स्थापित करना था अर्थात् यह शोध-पत्रिका इन दोनों के बीच एक ऐसे माध्यम का कार्य करे जिससे पाठक एवं लेखक के बीच के संवाद को बढ़ावा मिल सके ताकि लेखक के लेख प्रकाशित होने के पश्चात् यदि पाठक अपने ज्ञानकोष से उसमें कुछ जोड़ना चाहता है तो उसे भी भरपूर मौका मिल सके। दूसरा उद्देश्य भारतीय संगीत की समस्याओं को गहनता से अध्ययन करना था। इस पत्रिका के संपादक के रूप में प्रो. आर.सी. मेहता को चुना गया। उन्होंने कठिन परिश्रम एवं लगन के साथ इस महत्त्वपूर्ण कार्य को किया। इसके प्रकाशक श्री अमित आर. मेहता, जंबू बेट, डांडिया बाज़ार, बड़ौदा थे।

एक वर्ष के कठिन परिश्रम एवं लगन के पश्चात् वह समय आया जब इसे अपना स्वच्छंद रूप प्राप्त हुआ। नवंबर 1970 में इंडियन म्यूज़िकोलोजिकल सोसायटी का गठन हुआ और इस शोध पत्रिका, जो कि अभी तक 'संगीत कला विहार के अंग्रेज़ी संस्करण' के रूप में जानी जाती थी, को सोसायटी की अधिकारिक शोध-पत्रिका के रूप में मान्यता प्रदान की गई। इंडियन म्यूज़िकोलोजिकल सोसायटी ने यह निश्चय किया कि अगले वर्ष से शोध-पत्रिका को ''जरनल ऑफ इंडियन म्यूज़िकोलोजिकल सोसायटी'' शीर्षक के साथ छापा जाए। कई वर्षों तक यह शोध-पत्रिका एक त्रैमासिक के रूप में प्रकाशित की जाती रही। उसके पश्चात् वर्ष 1982 से इसे कुछ कारणों से त्रैमासिक से द्विवार्षिक के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। इस शोध पत्रिका में छपने वाली सामग्री में विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखे गए प्रबंध, रिर्पोट, विभिन्न शोध ग्रंथों पर लिखी गई टिप्पणी, एवं भारतीय संगीत की गहन समस्याओं पर लिखे विभिन्न शोध लेख थे, इसके अतिरिक्त न्यूज़ एंड नोट्स के अंतर्गत संगीत जगत् में होने वाली विभिन्न गतिविधियों एवं क्रियाकलापों के विषय में भी लिखा जाता रहा है।

शोध पत्रिका द्वारा समय समय पर कुछ विशेषांकों का प्रकाशन भी किया गया, जिनमें एक महत्त्वपूर्ण विषय पर विभिन्न विद्वानों के शोध लेख एकत्रित करके भी प्रकाशित किए गए। शोध पत्रिका का तय किए गए मापदंडों के आधार पर आँकलन इस प्रकार है।

जर्नल ऑफ इंडियन म्यूज़िकोलोजिकल सोसायटी : मापदंडों के आधार पर आँकलन एवं विश्लेषण

यह पूर्व में ही बताया जा चुका है कि इंडियन म्युज़िकोलोजिकल सोसायटी द्वारा प्रकाशित जर्नल ऑफ इंडियन म्यूज़िकोलोजिकल सोसायटी सन् 1970 में आरंभ हुआ और इसका प्रकाशन 2010 तक हुआ। इसके प्रकाशन में मध्य में एक वर्ष के अंतर के आ जाने के बाद कुल 40 वर्षों का प्रकाशन काल रहा। इन 40 वर्षों को पाँच-पाँच वर्षों के कालांश में विभाजित कर आठ कालांशों का आँकलन किया गया है। इसके अंतर्गत शोध पत्रिका के आठ कालांशों के आँकलन का सार इस प्रकार है।

5.4.1 प्रथम कालांश : वर्ष 1 से वर्ष 5 (जनवरी 1970 से दिसंबर 1974 तक)

प्रारंभ में यह कह देना अति आवश्यक होगा इसके दिग्दर्शक एवं संपादक प्रकाशक प्रो. आर. सी. मेहता जिनका हाल ही में निधन (18 अक्तूबर, 2014) हो चुका है। उन्हीं की दूरदर्शिता के कारण यह शोध-पत्रिका अपने इतिहास को समेटे हुए है। इस अवधि में उनके अथक परिणामों के फलस्वरूप न जाने कितने ही संगीत क्षेत्र के विद्वजनों को एक धरातल पर ला कर खड़ा कर दिया। यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि कालान्तर में जहाँ विभिन्न पत्रिकाओं ने अपना सिक्का जमाया वहीं 'जिम्स' ने एक अभूतपूर्व भूमिका निभाई। देश में नहीं अपितु विदेशों में भी इसने अपनी एक पहचान बनाई।

प्रोफेसर आर.सी. मेहता द्वारा संपादित शोध-पत्रिका जर्नल ऑफ इंडियन म्यूज़िकोलोजिकल सोसायटी के पहले पाँच वर्षों में कुल 117 लेख प्रकाशित हुए। इन पाँच वर्षों में कुल लेखों में से संगीत विषय से संबंधित 85, नृत्य में 24, नाट्य में 2 एवं अन्य 12 लेखों का प्रकाशन किया गया। पहले, तीसरे एवं पाँचवें वर्ष में नाट्य से संबंधित कोई लेख प्रकाशित नहीं हुआ एवं तीसरे वर्ष में कोई ऐसा लेख प्रकाशित नहीं हुआ जिसे अन्य की श्रेणी में रखा जा सके।

पूर्व में तय किए गए मापदंडों के आधार पर किए गए आँकलन के अनुसार सभी विषयों के अंतर्गत अनुसंधान में प्राथमिक स्त्रोत के रूप में शोध लेखों की कुल संख्या 99 अर्थात् कुल प्रकाशित 117 लेखों में से 99 लेख अनुसंधान में उपयोगी सिद्ध होने की क्षमता रखते हैं। यह एक अच्छी संख्या है अर्थात् 84.61 प्रतिशत लेख अनुसंधान उपयोगी हैं। ऐसे शोध लेख जिनमें तथ्यों एवं उद्धरणों का प्रयोग किया गया है उनकी संख्या 22 है। उच्च कोटि के लेखकों द्वारा लिखित शोध लेख 69 हैं एवं इस कालांश में प्रकाशित रिर्पोटों की संख्या 21 है।

कुल प्रकाशित लेखों में से संगीतानुसंधान में उपयोगी शोध लेखों की संख्या 76 है अर्थात् 64.95 प्रतिशत शोध लेख संगीतानुसंधान में उपयोगी सिद्ध होने की क्षमता रखते हैं।

5.4.2 द्वितीय कालांश : वर्ष 6से वर्ष 10 तक (वर्ष 1975 से वर्ष 1979 तक)

शोध पत्रिका के छटे से दसवें वर्ष अर्थात् मार्च 1975 से 1979 तक का आँकलन किया गया। इन पाँच वर्षों में कुल 85 लेख प्रकाशित हुए। इन पाँच वर्षों में संगीत विषयक कुल 65 व नृत्य विषयक कुल 7 व अन्य 14 लेख सम्मिलित किए गए। प्रस्तुत कालांश में नाट्य संबंधी एक भी लेख शोध-पत्रिका में प्रकाशित नहीं हुआ।

पूर्व में तय किए गए मापदंडों के अनुसार किए गए आँकलन के पश्चात् पाया गया कि सभी प्रकाशित शोध लेखों में से अनुसंधान में प्राथमिक स्त्रोत के रूप में उपयोगी शोध लेखों की संख्या 74 है जो कि कुल प्रकाशित शोध लेखों का 87 प्रतिशत है। ऐसे शोध लेख जिनमें तथ्यों एवं उद्धरणों का प्रयोग किया गया है उनकी संख्या 24 है एवं उच्च कोटि के लेखकों द्वारा लिखित शोध लेख 58 हैं। इनके साथ-साथ एक रिर्पोट भी प्रकाशित की गई है।

संगीत विषय के कुल प्रकाशित 65 शोध लेखों में से संगीतानुसंधान में उपयोगी शोध लेखों की संख्या 56 है। अर्थात् 86.15 प्रतिशत लेख संगीतानुसंधान में उपयोगी सिद्ध होने की क्षमता रखते हैं।

5.4.3 तृतीय कालांश : वर्ष 11 से वर्ष 15 तक (वर्ष 1980 से वर्ष 1984 तक)

शोध पत्रिका के ग्यारहवें से पंद्रहवें वर्ष के कालांश का आँकलन करने पर ज्ञात हुआ कि प्रस्तुत कालांश में पाँच वर्षों में कुल 46 शोध लेखों का प्रकाशन हुआ। इन पाँच वर्षों के कालांश में कुल 46 लेखों में से संगीत विषय से संबंधित 35, नृत्य संबंधित 3 एवं अन्य 8 लेख प्रकाशित हुए। इस कालांश में भी नाट्य संबंधी एक भी लेख प्रकाशित नहीं हुआ।

शोधार्थी द्वारा तय किए गए मापदंडों के आधार पर किए गए आँकलन के अनुसार सभी विषयों के अंतर्गत अनुसंधान में प्राथमिक स्त्रोत के रूप में शोध लेखों की कुल संख्या 37 है। जो कि कुल प्रकाशित लेखों का 80.43 प्रतिशत है। वे शोध लेख जिनमें उद्धरणों का प्रयोग किया गया है उनकी संख्या 23 है एवं उच्चकोटि के लेखकों द्वारा लिखे गए शोध लेखों की संख्या 31 है। इनमें कुछ लेख ऐसे भी हैं जिनमें उद्धरण भी दिए गए हैं और उनके लेखक भी उच्च श्रेणी में आते हैं।

संगीत विषय के कुल 35 शोध लेखों में से संगीतानुसंधान में उपयोगी शोध लेखों की संख्या 30 है अर्थात् प्रतिशत लेख संगीतानुसंधान में उपयोगी सिद्ध होने की क्षमता रखते हैं। अर्थात् 65.21 प्रतिशत लेख संगीतानुसंधान में उपयोगी सिद्ध होने की क्षमता रखते हैं।

5.4.4 चतुर्थ कालांश : वर्ष 16 से वर्ष 20 तक (वर्ष 1985 से वर्ष 1989 तक)

प्रस्तुत शोध पत्रिका के सोलहवें से बीसवें वर्ष तक के प्रकाशन का आँकलन करने पर ज्ञात हुआ कि इन पाँच वर्षों में कुल 69 शोध लेख प्रकाशित हुए। इस कालांश में कुल 69 लेखों में से संगीत विषय से

संबंधित 60, नृत्य संबंधी 1 व 8 अन्य लेखों का प्रकाशन हुआ। नाट्य संबंधी कोई लेख सम्मिलित नहीं किया गया था।

तय किए गए मापदंडों के आधार पर किए गए आँकलन के अनुसार सभी विषयों के अंतर्गत अनुसंधान में प्राथमिक स्त्रोत के रूप में शोध लेखों की कुल संख्या 54 है। जो कि कुल प्रकाशित लेखों का 78.26 प्रतिशत है। शोध लेख जिनमें तथ्यों एवं उद्धरणों का प्रयोग किया गया है उनकी संख्या 24 है एवं उच्च श्रेणी के लेखकों द्वारा लिखे गए शोध लेखों की संख्या 43 है।

कुल प्रकाशित 69 लेखों में से 53 शोध लेख ऐसे शोध लेख माने जा सकते हैं जिनका उपयोग संगीतानुसंधान में प्राथमिक स्त्रोत के रूप में भली भाँति किया जा सकता है अर्थात् 76.81 प्रतिशत लेख संगीतानुसंधान में उपयोगी हैं।

5.4.5 पंचम् कालांश : वर्ष 21 से वर्ष 25 तक (वर्ष 1990 से वर्ष 1994 तक)

शोध पत्रिका के 21वें से 25वें वर्ष तक के कालांश में कुल 47 लेखों में से संगीत विषय से संबंधित 41 लेख प्रकाशित हुए। नृत्य संबंधी केवल 1 ही लेख व अन्य 5 लेखों का प्रकाशन हुआ। नाट्य संबंधी एक भी शोध लेख इस अंतराल में प्रकाशित नहीं हुआ। पूर्वनिर्धारित मापदंडों के आधार पर किए गए आँकलन के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि सभी विषयों के अंतर्गत अनुसंधान में प्राथमिक स्त्रोत के रूप में शोध लेखों की कुल संख्या 40 है। जोकि कुल शोध लेखों की 85.10 प्रतिशत है। ऐसे शोध लेख जिनमें उद्धरणों एवं पादटिप्पणियों का प्रयोग किया गया है, की संख्या 14 है एवं 36 ऐसे शोध लेख हैं जिन्हें उच्च कोटि के लेखकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। कुल प्रकाशित लेखों में से संगीत विषय क अनुसंधान में उपयोगी शोध लेखों की संख्या 36 प्राप्त हुई है। अर्थात् 76.59 प्रतिशत शोध लेख संगीतानुसंधान में उपयोगी सिद्ध होने की क्षमता रखते हैं।

5.4.6 षष्टम् कालांश : वर्ष 26 से वर्ष 30 तक (वर्ष 1995 से वर्ष 1999 तक)

पत्रिका के 26वें से 30वें संस्करण तक के प्रकाशन का आँकलन करने पर ज्ञात हुआ कि इस कालांश में 52 लेख प्रकाशित हुए। इस कालांश में संगीत विषय क 51 लेखों का प्रकाशन हुआ। नृत्य एवं नाट्य से संबंधित कोई लेख प्रकाशित नहीं किया गया। इस कालांश में भी शोध पत्रिका का संपूर्ण प्रकाशन संगीत को ही समर्पित था। अन्य की श्रेणी के अंतर्गत केवल एक ही लेख प्रकाशित किया गया। मापदंडों के आधार पर किए गए आँकलन के अनुसार सभी विषयों के अंतर्गत अनुसंधान में प्राथमिक स्त्रोतों के रूप में शोध लेखों की कुल संख्या 46 है। जोकि कुल शोध लेखों की 86.53 प्रतिशत है। ऐसे शोध लेख जिनमें उद्धरणों का प्रयोग किया गया है उनकी संख्या 16 है एवं उच्च कोटि के लेखकों द्वारा प्रस्तुत किए गए शोध लेखों की संख्या 41 है।

संगीत विषय से संबंधित शोध लेखों में से 47 शोध लेखों को संगीतानुसंधान में उपयोगी माना जा सकता है। लगभग 90.38 प्रतिशत शोध लेख संगीतानुसंधान में उपयोगी हैं।

5.4.7 सप्तम् कालांश : वर्ष 31 से वर्ष 35 तक (वर्ष 2000 से वर्ष 2004 तक)

शोध पत्रिका के प्रस्तुत कालांश वर्ष 2000 से वर्ष 2004 तक के आँकलन करने पर ज्ञात हुआ कि इन पाँच वर्षों में कुल 37 शोध लेख प्रकाशित हुए। यह संख्या अन्य लिए गए कालांशों की तुलना में काफी कम थी। इस कालांश में संगीत के 31 शोध लेख प्रकाशित हुए। इसमें 6 शोध लेख अन्य श्रेणी के अंतर्गत प्रकाशित माने जा सकते हैं।

मापदंडों के आधार पर किए गए आँकलन के अनुसार सभी विषयों के अंतर्गत अनुसंधान में प्राथमिक स्त्रोत के रूप में शोध लेखों की कुल संख्या 30 है। यह संख्या कुल प्रकाशित लेखों का 78.94 प्रतिशत है। इसके साथ 24 शोध लेख ऐसे पाए गए जिन्हें उच्च श्रेणी के प्रसिद्ध लेखकों द्वारा प्रस्तुत किया गया और 19 शोध लेख उद्धरणों एवं पाद टिप्पणियों के साथ प्रकाशित किए गए।

संगीत विषय के कुल प्रकाशित लेखों में से 29 शोध लेख अनुसंधानुपयोगी माने जा सकते हैं अर्थात् कुल प्रकाशित शोध लेखों का 78.37 प्रतिशत शोध लेख अनुसंधान के लिए स्त्रोत रूप में प्रकाशित है।

5.4.8 अष्टम् कालांश : वर्ष 36 से वर्ष 40 तक (वर्ष 2005 से वर्ष 2010 तक)

जर्नल ऑफ इंडियन म्यूज़िकोलोजिकल सोसायटी के अंतिम कालांश के आँकलन में शोध लेखों की संख्या में एक बार फिर वृद्धि हुई थी। इससे पूर्व के पाँच वर्षों में जो 38 थी, इस कालांश में 70 तक पहुँच गई थी। चूँकि 36वाँ एवं 37वाँ अंक एक संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित हुए इसलिए चार ही अंक प्रकाशित हुए। इस कालांश में ITC-SRA एवं NCPA के योगदान से आयोजित नैशनल कान्फ्रेंस में प्रस्तुत शोध-पत्रों को शोध पत्रिका में सम्मिलित किया जाने लगा।

इन पाँच वर्षों में संगीत विषय क कुल 63 शोध लेख व नृत्य सम्बंधी केवल 2 लेखों का प्रकाशन किया गया। अन्य श्रेणी के अन्तर्गत 6 लेखों का प्रकाशन किया गया। आँकलन के पश्चात् कुल 71 लेखों में से 60 लेखों को अनुसंधान में उपयोगी माना जा सकता है अर्थात् 60 लेखों को अनुसंधान में महत्त्वपूर्ण स्त्रोत माना जा सकता है। शोध लेख जिनमें उद्धरणों एवं पाद टिप्पणियों का प्रयोग किया गया उनकी संख्या 34 है एवं वे लेख जिन्हें जाने माने व उच्च श्रेणी के लेखकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है वे 53 थे। इसके साथ-साथ इसमें 3 रिपोर्ट शामिल किए गए।

संगीत विषयक कुल 63 शोध लेखों में से 59 शोध लेख ऐसे पाए गए जो संगीतानुसंधान में उपयोगी सिद्ध होने की क्षमता रखते है। अर्थात् 84.28 प्रतिशत ऐसे शोध लेख हैं जो संगीतानुसंधान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं अथवा शोधार्थी के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

यहाँ यह बात गौर करने की है कि पहले एवं तीसरे कालांश के अतिरिक्त कभी भी यह संख्या 70 प्रतिशत से नीचे नहीं आई है। कुल प्रकाशित सामग्री का आँकलन से स्पष्ट होता है कि संगीत में शोध को बढ़ावा देने में शोध पत्रिका का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसके साथ-साथ ही कई अन्य शोध पत्रिकाएँ भी हैं जो संगीत की विभिन्न विधाओं पर शोधपूर्ण लेखों का प्रकाशन करती हैं। इन सभी शोध पत्रिकाओं में भी संगीत में शोध को बढ़ावा देने एवं शोध प्रविधि के अंतर्गत शोधकर्ताओं के लिए महत्त्वपूर्ण स्त्रोतों का समावेश होता है। ये पत्रिकाएँ परोक्ष रूप से संगीत में होने वाले शोध में एक महत्त्वपूर्ण योगदान देती रही हैं और भविष्य में भी देती रहेंगी।

अंत में, संगीत के उत्थान में कार्यरत विभिन्न शोध पत्रिकाएँ एवं पत्रिकाएँ पूर्णत: समर्पित हो कर इस कार्य को कर रही हैं। इन पत्रिकाओं में इनके संपादकगण एवं लेखकगण पूर्ण सहयोग दे रहे है। ये शोध पत्रिकाएँ मुख्य रूप से संगीत में अनुसंधान को प्रोत्साहित करते हुए आगे बढ़ रही हैं। इन शोध पत्रिकाओं को इनका उचित स्थान मिलना एवं शोध में इनका उचित उपयोग करना अत्यधिक आवश्यक है। शोधार्थियों को चाहिए कि इन शोध पत्रिकाओं एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध लेखों की गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए इन्हें अपने शोध में तथ्य रूप में प्रयोग करें ताकि इससे शोध का स्तर ऊँचा उठ सके।

पाद-टिप्पणियाँ :

1. Emory, C. William, Business Research Methods, Home Wood Hilinous, Richard D. Irwin, 1976., p. 8
2. राय, सुरेशव्रत संगीत में शोध, संगीत पत्रिका, शोध अंक, जनवरी-फरवरी, 1990, संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ. 86
3. शर्मा, पंकजमाला, संगीत पत्रिका, जनवरी, 1998, संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ. 7
4. सक्सेना, मधुबाला, भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, हरियाणा साहित्य प्रकाशन, चंडीगढ़, पृ. 46
5. वही, पृ. 84
6. सिंहल, बैजनाथ, शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्य विधि, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली, 1980, पृ. 17
7. Witney, F.L. The Elements of Research, Angel Wood Williams, Prentice Hall Inc. 1956, p. 20
8. Sills, D.L., Encyclopedia of the Social Sciences, McMillan company and the Free press, New York, 1968.
9. Best, John W., Research in Education, prentice Hall of India Pvt. Ltd. New Delhi, 1982, p. 9
10. Ibid
11. Young, Pauline V., Scientific social survey and Research, New Delhi, Prentice Hall of India, 1977, p30